स्वराज संदर्भ

वर्ष 14 अंक 290, 15 जनवरी 2018

स्वाधीनता संग्राम एवं स्वराज के बहुविध विषयों पर एकाग्र आलेख श्रृंखला

स्वराज संस्थान संचालनालय की नि:शुल्क फीचर सेवा

इस बार

1. जब हम गणतंत्र बने और अपना कानून हमने स्वीकार किया
-विवेक गुप्ता

2. सतत बलिदान का प्रतीक महराणा प्रताप का जीवन
-गणेशशंकर विद्यार्थी

3. हुकुमचंद जैन जिन्हें घर के सामने दी फांसी
-अंतर सिंह

4. बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी-महान सेनानी माखनलाल चतुर्वेदी
-ए कमर

5. किसानों का योगदान भी रहा है आजादी के आंदोलन में
-राजकुमार गुप्ता

6. आजादी के लिए तड़पते रहे रासबिहारी
-जाहिद खान

7. स्वाधीनता संग्राम के महान नेता-सुभाष चन्द्र बोस
-वीरेंद्र परिहार

मनोज श्रीवास्तव
आयुक्त
स्वराज संस्थान संचालनालय

संजय यादव
सहायक संचालक, स्वराज संस्थान

प्रदीप अग्रवाल
समन्वयक

रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति
संपादकीय संयोजन

पत्र व्यवहार
स्वराज भवन
रवीन्द्र भवन परिसर, भोपाल,
मप्र फोन- 0755 2660407

तकनीकी सूचना

अब स्वराज संदर्भ के आलेख यूनीकोड फोंट में **www.swarajsandarbh.blogspot.in** से ले सकते हैं। ये फोंट किसी भी हिंदी फोंट में कन्वर्ट हो सकते हैं। अधिक सहायता के लिए ईमेल कर सकते हैं- **swarajbhavan@gmail.com**

26 जनवरी पर विशेष

जब हम गणतंत्र बने और अपना कानून हमने स्वीकार किया

क्या आप जानते हैं कि 26 जनवरी को देश का 'स्वतंत्रता दिवस' भी मनाया जाता था और यह देश को वास्तविक आजादी मिलने से पहले की बात है। यह तथ्य चौंकाता है और साथ ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक महत्वपूर्ण अध्याय के बारे में जानने की उत्सुकता भी जगाता है, जिसकी स्मृति में 26 जनवरी को ही संविधान लागू करने का निर्णय लिया गया था।

विवेक गुप्ता

26 जनवरी वह तिथि है, जब भारत का संविधान लागू हुआ था। यह पूरी दुनिया के सामने यह घोषणा कि भारत एक पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य बन गया है। तब से यह दिन गणतंत्र दिवस के रूप में मनाया जाता है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि 26 जनवरी को देश का 'स्वतंत्रता दिवस' भी मनाया जाता था और यह देश को वास्तविक आजादी मिलने से पहले की बात है। यह तथ्य चौंकाता है और साथ ही भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक महत्वपूर्ण अध्याय के बारे में जानने की उत्सुकता भी जगाता है, जिसकी स्मृति में 26 जनवरी को ही संविधान लागू करने का निर्णय लिया गया था।

भारतीय संविधान तो 26 नवंबर, 1949 को ही बनकर तैयार हो गया था। यह तिथि संविधान दिवस के रूप में मनाई जाती है। फिर हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने 26 जनवरी तक इंतजार क्यों किया? दरअसल, अगस्त 1947 से पूर्व तक 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाया जाता था। लेकिन 15 अगस्त, 1947 को अंग्रेजों से स्वतंत्रता मिल जाने के बाद जनवरी में ऐसे किसी दिवस का औचित्य नहीं रह गया। बहरहाल, 26 जनवरी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक निर्णायक तिथि थी, इसलिए इसकी स्मृति को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए इसी दिन संविधान लागू करने का निर्णय लिया गया। संविधान लागू होने से पूर्व भारत स्वतंत्र होने के बावजूद बहुत से मामलों में अंग्रेजों की बनाई परिपाटी पर चलने को बाध्य था। देश की व्यवस्था 1935 के संशोधित औपनिवेशिक भारत सरकार अधिनियम पर निर्भर थी। यानी यह कहा जा सकता है कि 26 जनवरी, 1950 को स्वदेशी संविधान के अंगीकरण के साथ ही देश पूर्ण प्रभुत्वसंपन्न गणराज्य बनकर वास्तविक अर्थों में स्वतंत्र हुआ।

26 जनवरी का महत्व

आजादी की लड़ाई में अग्रणी भूमिका निभाने

स्वराज संदर्भ में प्रकाशित विचार लेखकों के अपने हैं। जरूरी नहीं कि शासन उनसे सहमत हो।

वाली भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिसंबर, 1929 में अविभाजित पंजाब की राजधानी लाहौर में हुआ था। इसकी अध्यक्षता जवाहरलाल नेहरू ने की थी। इस अधिवेशन के दौरान पूर्ण स्वराज के घोषणापत्र को अंतिम रूप दिया गया। इसका प्रस्ताव नेहरू जी ने दिया था। 31 दिसंबर, 1929 की मध्य रात्रि, रावी के तट पर आयोजित अधिवेशन में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव पारित किया गया। इसमें कहा गया था अब हमारा ध्येय पूर्ण स्वराज है। पं. नेहरू ने कहा कि अंग्रेजी हुकूमत के आगे अब और झुकना मानव तथा ईश्वर, दोनों के प्रति अन्याय है।

इस अवसर पर पूर्ण स्वराज को मुख्य ध्येय घोषित करने के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण निर्णय भी लिए गए-

-गोलमेज सम्मेलन का बहिष्कार होगा।

-कांग्रेस कार्यसमिति को सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। इसमें टैक्स नहीं देने जैसे कई कार्यक्रम सम्मिलित थे।

-भावी चुनावों में भाग न लेने का निर्णय लिया गया और यह भी तय किया गया कि विधानमंडलों के वर्तमान कांग्रेसी सदस्य इस्तीफा दे देंगे।

-अधिवेशन में यह तय किया गया कि जनवरी के अंतिम रविवार, यानी 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में प्रथम स्वतंत्रता दिवस मनाया जाए और आगे भी यह परंपरा जारी रखी जाए।

इस अवसर पर जवाहरलाल नेहरू ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में घोषणा की कि विदेशी शासन से अपने देश को मुक्त कराने के लिए अब हमें खुला विद्रोह करना है और सभी देशवासी इस पुनीत कार्य में हाथ बंटाने के लिए आगे आएं। नेहरूजी ने यह साफ किया कि स्वराज का मतलब अंग्रेजों की रवानगी भर नहीं है। उन्होंने कहा, मुझे स्पष्ट स्वीकार करना चाहिए कि मैं एक समाजवादी और गणतांत्रिक हूं। मेरा राजा-महाराजाओं में विश्वास नहीं है, न ही मैं उन उपक्रमों में विश्वास रखता हूं जो राजा-महाराजा पैदा करते हैं।

पूर्ण स्वराज की घोषणा करते हुए कहा गया था- हमारा मानना है कि अन्य मानवों की तरह भारतीयों का भी अधिकार है कि वे अपनी मिट्टी के फलों का आनंद लेने और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की प्राप्ति की स्वतंत्रता का आनंद उठाएं, ताकि उन्हें विकास और प्रगति के संपूर्ण अवसर मिल सकें। हमारा यह भी मानना है कि अगर सरकार किसी व्यक्ति को इनसे वंचित रखती है और दमन करती है, तो लोगों को उसे बदलने या हटा देने का अधिकार है। भारत में अंग्रेजी सरकार ने जनता को न केवल स्वतंत्रता से वंचित कर रखा है, बल्कि जनसमूहों का शोषण किया है तथा देश पर दमनपूर्ण शासन किया है। अब इस ब्रिटिश राज को समाप्त करते हुए पूर्ण स्वराज प्राप्त करना चाहिए।

यूं बनी स्वराज की पृष्ठभूमि

दरअसल, इसके पूर्व कांग्रेस की मांग अधिशासित दर्जे (डोमिनियन स्टेटस) तक सीमित थी, यानी वह देश के लिए ब्रिटिश सत्ता के भीतर ही अधिक अधिकार चाहती थी। इस संबंध में दिसंबर 1928 में कलकत्ता (अब

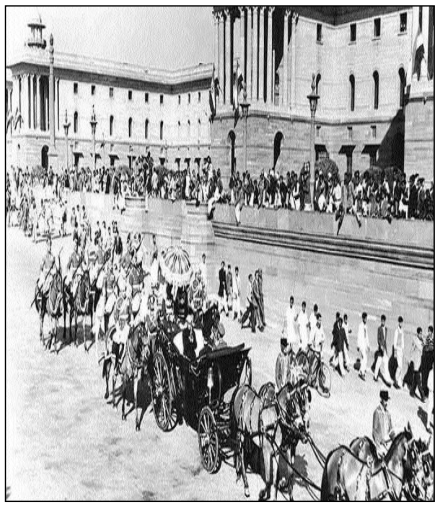

कोलकाता) में हुए कांग्रेस अधिवेशन में इस दर्जे को मुख्य लक्ष्य घोषित किया गया था। इसकी अध्यक्षता मोतीलाल नेहरू ने की थी और उनके द्वारा बनाई गई 'नेहरू रिपोर्ट' में ही डोमिनियन स्टेटस की मांग का प्रस्ताव था। हालांकि सुभाषचंद्र बोस, जवाहरलाल नेहरू और सत्यमूर्ति जैसे युवाओं ने इसका विरोध किया। उनका मानना था कि पूर्ण स्वराज या पूर्ण स्वतंत्रता से कम की मांग नहीं की जानी चाहिए।

बहरहाल, गांधीजी और मोतीलाल नेहरू जैसे वरिष्ठ नेताओं की राय थी कि स्वायत्तता के मुद्दे पर कठिनाई से सहमति बन सकी है, इसलिए इसे यूं ही त्याग देना उचित नहीं। मध्यमार्ग के रूप में यह तय हुआ कि स्वायत्तता देने के लिए अंग्रेजी सरकार को दो वर्ष का समय दिया जाए और ऐसा न होने पर पूर्ण स्वराज को लक्ष्य बनाया जाए। हालांकि युवाओं के प्रबल आग्रह को देखते हुए इस अवधि को घटाकर एक वर्ष कर दिया गया। यह निर्णय भी लिया गया कि स्वराज के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया जाएगा।

1929 में परिस्थितियां तेजी से बदलने लगीं। महात्मा गांधी ने पूरे देश का दौरा शुरू कर दिया। कांग्रेस विदेशी सामानों के बहिष्कार आंदोलन की तैयारी करने लगी। कांग्रेस के क्रियाकलापों में प्रार्थना और निवेदन के बजाय आक्रामकता का पुट नजर आने लगा। इस बीच मार्च में महात्मा गांधी को गिरफ्तार कर लिया गया। 2 नवंबर, 1929 को प्रमुख नेताओं के सम्मेलन में दिल्ली घोषणापत्र जारी किया गया। इसमें मांग की गई कि गोलमेज सम्मेलन के दौरान डोमिनियन स्टेटस देने के समय पर बात न हो, बल्कि इसे अमलीजामा पहनाने का खाका खींचा जाए। इसके अलावा गोलमेज में कांग्रेस का बहुमत प्रतिनिधित्व होने तथा राजनीतिक कैदियों को आम माफी देने की मांग भी की गई। हालांकि 23 दिसंबर, 1929 को वायसराय लॉर्ड इरविन ने तमाम मांगों को सिरे से खारिज कर दिया। इस तरह अंग्रेज सरकार से सीधे संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार हो गई थी, जिसका शंखनाद कुछ ही दिनों बाद लाहौर अधिवेशन में हो गया।

ऐसा था पहला स्वतंत्रता दिवस

लाहौर में पारित प्रस्ताव के अनुरूप 26 जनवरी, 1930 को देशभर में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। अनेक स्थानों पर सभाएं हुईं, जिनमें आम जनता ने स्वतंत्रता प्राप्ति का संकल्प लिया। शहरों के साथ ही दूरदराज के गांवों और कस्बों में भी ऐसे आयोजन हुए। इस दौरान ली जाने वाली शपथ में ब्रिटिश राज की भर्त्सना की गई तथा उससे हर तरह से असहयोग करने और पूर्ण स्वराज की प्राप्ति के लिए कांग्रेस द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने का संकल्प लिया गया। यह कहा गया कि स्वतंत्रता भारतीय जनता का ऐसा अधिकार है, जिसे छीना नहीं जा सकता। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन ने जनता से स्वतंत्रता का अधिकार छीनकर न सिर्फ उसका शोषण किया है, बल्कि उसे आर्थिक, राजनैतिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक रूप से विनष्ट भी कर दिया है।

तब से हर साल 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाया जाने लगा। बाद में, अंग्रेजों के देश छोड़कर जाने के बाद भी इस तिथि की स्मृति बनाए रखने के लिए 26 जनवरी, 1950 को संविधान लागू करने का निर्णय लिया गया। इस तरह देश का पहला 'स्वतंत्रता दिवस' ही गणतंत्र दिवस बना।

महाराणा प्रताप पर गणेशशंकर विद्यार्थी का निबंध

सतत बलिदान का प्रतीक महाराणा प्रताप का जीवन

स्वतंत्रता देवी के पवित्र मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं, जिनके हृदय का स्थान छोटा है। अपने सिर को कटा कर नहीं, बल्कि अपने सिर को अपने धड़ पर कायम रख कर बराबर उसके काटे जाने का कष्ट सहते हुए, महलों ही को छोड़ कर नहीं, जब तक उसकी दीवारें सिर उठा कर संसार के साथ नजर न मिला सकें, अपने मनोवांछित कामों को पूरा होते देख कर प्रसन्न न हो जाएं, तब तक फूस पर सोएंगे, पत्तों पर खाएंगे और शारीरिक सुखों का स्वप्नों में भी खयाल न करेंगे। तपस्या का यही अंत नहीं।

गणेशशंकर विद्यार्थी

'बलिदान केवल बलिदान'– चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी बलिदान चाहती है। बादल उमड़े थे, बिजलियां कड़की थीं और घोर अंधकार छा गया था। अपवित्रता पवित्रता पर कब्जा करना चाहती थी और अनाचार आचार और व्यवहार की ईंट से ईंट बजा देने वाला था। हृदय कांप उठे थे, अशांति की लहरें बड़े जोरों से शांति के किले के कंगूरों को एक–एक करके ढा रही थीं। सूर्यदेव भी अपने वंशजों को सदा के लिए अंधकार में छोड़ देने के लिए तैयार थे और चित्तौड़ की दीवारें भी ऊंचा सिर रखते हुए नीची नजर कर चुकी थीं। बेढब बाजी लगी थी। पद्मिमनी का दांव था। पांसे उलटे पड़ रहे थे। लेकिन रुख बदला। किसी की दया या कृपा से नहीं और किसी की कमजोरी या नीचता से भी नहीं। रक्त की वर्षा हो गयी। रक्त की प्यासी भूमि की प्यास मिट गई। चित्तौड़ की देवियों को राख का ढेर होते देख कर चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी के हृदय का ताप मिट गया।

फिर वही दृश्य और फिर वही कार्य। समय के पहिए घूमे और चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी ने, दया से या निर्दयता से, फिर अपना खप्पर हाथ में ले लिया। वीरों ने फिर उसे अपने अमूल्य खून से भर दिया। लेकिन जयमल और उसके वीर साथियों का रक्त उसकी प्यास को न बुझा सका। चित्तौड़ की देवियों ने अपने कोमल शरीरों को उसके लिए अग्नि के सुपुर्द किया। लेकिन उन्हें मुट्ठी–भर ही खाक में पलट जाते हुए देख कर उसके हृदय की जलन और बढ़ी और इतनी बढ़ी कि वह स्वयं चित्तौड़ से आगे बढ़ गई। चित्तौड़ खाली हुआ। अकबर का झंडा उस पर फहराने लगा। चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी चाहती है, बलिदान!

उदयसिंह! आगे बढ़ और अपने प्राण उसकी पवित्र वेदी पर कुर्बान कर। लेकिन अरे! यह क्या? देवी की प्रतिष्ठा करने के लिए उठ कर आगे बढ़ने के बजाय तू पीठ दे कर भागता है! याद रख, तेरी इस भीरुता का फल अच्छा न होगा और आने वाली संतानें बड़े शर्म से तेरा नाम लेगी। सचमुच वह दिन चित्तौड़ के लिए बड़ा ही आभागा था, जिस दिन पन्ना ने तेरे लिए अपने बच्चे के लिए हृदय में कटारी घुसने दी। हत्यारे का शिकार तो तुझे होना था, जिससे फिर चित्तौड़ की लाज का शिकार तू इस निर्लज्जता के साथ न करने पाता। चित्तौड़ ने स्वतंत्रता के दिन भोगे थे और अब कालचक्र तेरी आड़ ले कर उसे परतंत्रता की सुनहली जंजीर से जकड़ने के लिए आगे बढ़ा है। हे भीरू और पतित आत्मा! चल, आगे बढ़ और दूसरे के लिए स्थान छोड़! ईश्वर के लिए नहीं, देश और जाति के लिए नहीं। जिन्होंने तेरे पूर्वजों की आन–बान कायम रखने के लिए रणकुंड में अपनी आहुति दे दी थी, बल्कि अपनी ही आत्मा की शांति के लिए। जा, इस संसार से उठ जा और उस महापुरुष के लिए स्थान खाली कर, जिसके और राणा संग्रामसिंह के बीच में, यदि तूने जन्म लेने का कष्ट न उठाया होता, तो चित्तौड़ को अपनी स्वाधीनता शत्रुओं के हाथ मिट्टी के मोल न देनी पड़ती।

आओ प्रताप, आओ, लेकिन पहले परीक्षा दो। स्वतंत्रता देवी के पवित्र मंदिर में उनके लिए स्थान नहीं, जिनके हृदय का स्थान छोटा है। कैसे परीक्षा दोगे? अपने सिर को कटा कर नहीं, बल्कि अपने सिर को अपने धड़ पर कायम रख कर बराबर उसके काटे जाने का कष्ट सहते हुए, महलों ही को छोड़ कर नहीं, लेकिन इस भीष्म शपथ को ले कर कि जब तक चित्तौड़ स्वाधीन नहीं होता, जब तक उसकी दीवारें सिर उठा कर संसार के साथ नजर न मिला सकें, जब तक उन वीर पुरुषों और वीर स्त्रियों की आत्माएं, जिनके खून से चित्तौगड़ की भूमि सिंची हुई है, अपने मनोवांछित कामों को पूरा होते देख कर प्रसन्न न हो जाएं, तब तक फूस पर सोएंगे, पत्तों पर खाएंगे और शारीरिक सुखों का स्वप्नों में भी खयाल न करेंगे। तपस्या का यही अंत नहीं। जो सिर स्वतंत्रता देवी के सामने झुका, याद रखो, उसे अधिकार नहीं कि संसार की किसी शक्ति के सामने झुके। तलवार की धार पर चलना है, लेकिन याद रखो, तुम्होरे मुंह से उफ् भी निकली, और तुम गए। ऐसे जाओगे कि कहीं भी पता न लगेगा और अपने साथ ही कितनी ही आशाओं और देश के कितने ही शुभ गुणों को लेते जाओगे।

अच्छा आदर–सत्कार पाने पर विभीषण मानसिंह चित्तौड़ के कुमार से बोला–राणा जी के सिर में जो दर्द है, उसकी दवा ले कर शीघ्र ही लौटूंगा। विभीषण–चिकित्सक मानसिंह शीघ्र ही लौटा। हल्दीघाटी के मैदान ने इस सुयोग्य चिकित्सक का आव्हान किया। प्रताप

भी अपनी कठिनाइयों का पहला पाठ पढ़ने के लिए इस रणक्षेत्र की ओर आगे बढ़ा। 22,000 साथी, लेकिन अंत में 8,000 ही बचे, शेष सब प्रताप को गुरु-दक्षिणा में देने पड़े। घमासान युद्ध! प्राणों का बाजार पूरा गरम! भीषणता और उसका सच्चा महत्व उसी समय समझ सकते हो, जब एक किसान की कुटी की शांति और सौम्यता से इस दृश्य की तुलना करो। मनुष्य की पाशविक शक्ति का पूरा नमूना, लेकिन साथ ही संसार के उज्जवल गुणों का पूरा खजाना। सैनिक मरते हुए एक पर एक गिर रहे हैं। ढाल-लेकिन अंत में कोमल शरीर ही ढाल का काम देते हैं। तलवार-मनुष्य के रक्त की तरलता देख कर उसका पानी और भी तरल हो जाता है। बर्छियां-जरा-सा भी अन्याय नहीं करतीं। इस यज्ञ-कुंड में, प्रताप, तुम अपनी जान की बार-बार आहुति दे रहे हो। लेकिन तुम इस तरह से छुटकारा नहीं पा सकते, तुम्हें संसार में रह कर संसार से संग्राम करना है। एक जान के बदले दूसरी जान। झाला ने अपनी जान दे कर अधिक कीमती जान बचा ली। रक्त-नदी बह उठी। लेकिन, चित्तौड़ की स्वतंत्रता देवी की प्यास न बुझी। अभी तो परीक्षा आरंभ ही हुई हैं। प्रताप, एक किले के बाद दूसरा किला दो। अब किले नहीं रहे तो जाओ, पहाड़ियों और जंगलों की खाक छानो। ऐ, रसद बंद हो गई, तो क्या हर्ज? पत्ते कहीं नहीं गए, जंगल का साया और कोदों (एक प्रकार का जंगली अनाज) का कोई हाथ न पकड़ लेगा। आज यहां, तो कल वहां, घास की रोटियां खाते ही मुगल आ पहुंचे। लड़ते-भिड़ते निकल चलो। सोने का बिछौना नहीं, कोई हर्ज नहीं। बड़ों के लिए पत्थर की चट्टानों और बच्चों के लिए बांस के पालने ही सही। अंधेरी रातें, धधकती दुपहरिया, कड़ाके का जाड़ा, वर्षा की रिमझिम, आत्मा की आग और परमात्मा? साथियों का मरते जाना और सैनिकों का कम होते जाना, कठिन तपस्या और कठोर व्रत। स्वतंत्रता की आराधना। चंचलता फटकने न पाए और अकर्मण्यमता पास न आने पाए। एक दिन नहीं और दो दिन भी नहीं, एक साथ पच्चीस वर्ष तक।

यह कैसी चीत्कार? चित्तौड़ की राजकुमारी के हाथ से एक वन-बिलाव घास-पात की रोटी छीन ले गया। राजकुमारी चीख उठी। बिलाव के डर से नहीं, भूख के डर से। राजकुमारी और रोटी के लिए तरसे, लेकिन प्रताप, यह क्या? तुम्हारी आत्मा कांप उठी? लड़की की वेदना देख कर और परिवार के कष्टों से क्या अब स्वतंत्रता देवी को अंतिम नमस्कार करना चाहते हो? शांत हो और जरा विचारो। देखो, वह तुम्हारे शत्रु, नहीं, स्वतंत्रता के शत्रु अपने खेमों में घी के दीप जला रहे हैं। क्यों? तुम्हारी हिम्मत टूटती हुई देख कर। इन दीपकों के घी और बत्ती के साथ, सच बताओ, तुम्हारा हृदय जला कि नहीं? हां, जला और अब उस जले पर नमक छिड़कने की जरूरत नहीं।

हो चुका। बस, चित्तौड़ की पवित्र भूमि, तुझे नमस्कार है। तुझे छोड़ता हूं। लेकिन स्वतंत्रता की देवी का पल्ला नहीं छोड़ता। जो था, सो सब इस देवी को अर्पण हो चुका। शरीर में जो हड्डियां बाकी हैं, वे भी उसके अर्पण हो चुकी हैं। जननी जन्मसभूमि! अंतिम दर्शन है। ले, आज्ञा दे!

प्रताप, आगे मत बढ़ो। तुम्हारी सच्ची माता तुम्हें बुला रही है। हरिश्चंद्र अपनी दासता के कर्तव्य में, जब हद से ज्यादा आगे बढ़ गए थे, तब कहते हैं कि निराकर प्रभु ने आकर उनका हाथ पकड़ा था। मेवाड़ की भूमि भी तेरा पैर पकड़ रही है। देख, उसका एक सपूत आगे बढ़ता है। भामाशाह तेरे पैर थामता है। देश को मत छोड़, वह तुझे छोड़ने के लिए तैयार नहीं। भाग्य भी अभी तक तुझे छोड़े था, लेकिन अब वह प्रार्थना करता है, उसे मत छोड़। ले धन! पच्चीस हजार आदमी इस धन से बारह वर्ष तक खा सकेंगे। तेरा साहस और तेरी दृढ़ता और उदारता के सामने उसका आसन डोल उठा है। देख, इस समय उसके हाथ में खप्पर नहीं, उसके हृदय में जलन नहीं, शांति से वह मुस्करा रही है, उसके हाथों में माला है और देख, वह तेरे गले में गिरती है। महान् पुरुष, निस्संदेह महान, पुरुष। भारतीय इतिहास के किसी खून में इतनी चमक है? स्वतंत्रता के लिए किसी ने इतनी कठिन परीक्षा दी? जननी जन्मभूमि के लिए किसने इतनी तपस्या की? देशभक्त, लेकिन देश पर अहसान जताने वाला नहीं, पूरा राजा, लेकिन स्वेच्छाचारी नहीं। उसकी उदारता और दृढ़ता का सिक्का शत्रुओं तक ने माना। चित्तौड़ का वह दुलारा था और चित्तौड़ की भूमि उसे दुलारी थी। उदार इतना कि बेगमें पकड़ी गईं और शान-सहित वापस भेज दी गईं। सेनापति फरीद खां ने कसम खाई कि प्रताप के खून से मेरी तलवार नहाएगी। प्रताप ने सेनापति को पकड़ कर छोड़ दिया।

अंतिम काल। जान नहीं निकलती। लेकिन, राणाजी, क्यों? मुझे विश्वास नहीं कि मेरे बाद चित्तौड़ की स्वाधनीता कायम रह सके। क्यों? राजकुमार अमरसिंह इतना दृढ़ नहीं। राजकुमार दृढ़ न सही, मेवाड़ के वे सरदार राणाजी की कसम खाते हैं कि हम अपने खून से स्वतंत्रता के उस बीज को, जो तूने बोया, सींचेंगे। शांति और उसकी आत्मा शरीर से बाहर होकर स्वतंत्रता देवी की पवित्र गोद में जा विराजी। प्रताप! हमारे देश का प्रताप! हमारी जाति का प्रताप! दृढ़ता और उदारता का प्रताप! तू नहीं है, केवल तेरा यश और कीर्ति है। जब तक यह देश है, और जब तक संसार में दृढ़ता, उदारता, स्वतंत्रता और तपस्या का आदर है, तब तक हम क्षुद्र प्राणी ही नहीं, सारा संसार तुझे आदर की दृष्टि से देखेगा। संसार के किसी भी देश में तू होता, तो तेरी पूजा होती और तेरे नाम पर लोग अपने को न्यौछावर करते। अमरीका में होता तो वाशिंगटन और अब्राहम लिंकन से तेरी किसी तरह कम पूजा न होती। इंग्लैंड में होता तो वेलिंगटन और नेल्सन को तेरे सामने सिर झुकाना पड़ता। स्कॉटलैंड में बलस और रॉबर्ट ब्रूस तेरे साथी होते। फ्रांस में जोन ऑफ आर्क तेरे टक्कर की गिनी जाती और इटली तुझे मैजिनी के मुकाबले में रखती।

लेकिन हां! हम भारतीय निर्बल आत्माओं के पास है ही क्या, जिससे हम तेरी पूजा करें और तेरे नाम की पवित्रता का अनुभव करें! एक भारतीय युवक, आंखों में आंसू भरे हुए, अपने हृदय को दबाता हुआ लज्जा के साथ तेरी कीर्ति गा नहीं-रो नहीं, कह-भर लेने के सिवा और कर ही क्या सकता है?

◘

शहादत दिवस 19 जनवरी पर विशेष

हुकुमचंद जैन जिन्हें घर के सामने दी फांसी

अंतर सिंह

भारत में अंग्रेजों का आगमन कम्पनियों के रूप में हुआ था। उस समय यह किसी ने नहीं सोचा था कि इस देश में वे राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक गुलामी का नया युग शुरू कर सकती हैं। यह ऐतिहासिक गलती इस देश ने की थी और 1947 तक इसे इस देश ने भुगता। आधुनिक भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की शुरुआत 1857 में हुई थी, इसे हम 1857 की क्रान्ति के रूप में अधिक जानते हैं। उन्होंने बादशाह से व्यापार करने की अनुमति प्राप्त की थी। ईस्ट इण्डिया कंपनी ने केवल पूरे भारत में व्यापार फैला लिया बल्कि यहां के व्यापार में भी दखल दिया था। धीरे-धीरे इस कंपनी ने यहां की स्थानीय राजनीति में दखल देना शुरू कर के भूमि पर व रियासतों पर भी कब्जा कर लिया। किसानों, मजदूरों व स्थानीय लोगों पर अत्याचार बढ़ता जा रहा था। इसे देखकर ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कंपनी से भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया।

ये तो वही हुआ जैसे आसमान से गिरे खजूर में अटके। मामूली रियासतों के साथ भी ब्रितानी शिकंजा आम जनता व सैनिकों पर भी कसता जा रहा था। स्थानीय लोगों व राजाओं को बेइज्जत किया जाता था व गुलामों से भी बद्तर व्यवहार किया जाता था। इससे जनता को समझ आने लगा था कि ब्रिटिश सरकार उनका शोषण कर रही है। इस असंतोष से विद्रोह की आग धीमे-धीमे सुलगने लगी थी। विभिन्न कारणों के चलते पूरे देश में फैल गई थी। उस समय क्रान्ति की शुरुआत की तिथि भी तय की गई थी लेकिन मंगल पांडे की घटना से क्रान्ति समय से पूर्व ही भड़क गई व जल्दी ही समग्र भारत में इसका फैलाव हो गया।

इस क्रांति में कम चर्चित रहे वीर सपूत हुकुमचंद जैन का नाम अमर है। 1816 में हांसी (हिसार) हरियाणा के प्रसिद्ध कानूनगो परिवार में श्री दुनीचंद जैन के घर हुआ था। जन्म जात प्रतिभा के धनी हुकुमचंद जी की फारसी और गणित में रुचि थी। अपनी शिक्षा व प्रतिभा के बल पर इन्होंने मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर के दरबार में उच्च पद प्राप्त कर लिया और बादशाह के साथ इनके बहुत अच्छे सम्बन्ध हो गए।

1841 में मुगल बादशाह ने इनको हांसी और करनाल जिले के इलाकों का कानूनगो व प्रबन्धकर्ता नियुक्त किया। ये सात साल तक मुगल बादशाह के दरबार में रहे, फिर इलाके के प्रबन्ध के लिए हांसी लौट आए। इस बीच ब्रितानियों ने हरियाणा प्रांत को अपने अधीन कर लिया। हुकुमचंदजी ब्रिटिश शासन में कानूनगो बने रहे, पर इनकी भावनाएं सदैव ब्रितानियों के विरुद्ध रहीं।

1857 में जब प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का बिगुल बजा तब लाला हुकुमचंद की देशप्रेम की भावना अंगड़ाई लेने लगी। दिल्ली में आयोजित देशभक्त नेताओं ने इस सम्मेलन में, जिसमें तात्या टोपे थे, वहीं लाला हुकुमचंद भी उपस्थित थे। बहादुर शाह से उनके गहरे सम्बन्ध पहले से ही थे अत- इन्होंने ब्रितानियों के विरुद्ध युद्ध करने की पेशकश की। इन्होंने सबको विश्वास दिलाया कि वे इस संग्राम में अपना तन मन और धन बलिदान करने को तैयार हैं। इनकी इस घोषणा से बहादुर शाह ने भी हुकुमचंदजी को विश्वास दिलाया कि वे अपनी सेना, गोला-बारूद तथा हर तरह की युद्ध सामग्री सहायता स्वरुप पहुंचाएंगे। हुकुमचंदजी इस आश्वासन को लेकर हांसी आ गए।

हांसी पहुंचते ही इन्होंने देशभक्त वीरों को एकत्रित किया और जब ब्रितानियों की सेना हांसी होकर दिल्ली पर धावा बोलने जा रही थी, तब उस पर हमला किया। लेकिन हुकुमचंद व इनके साथियों के पास जो युद्ध सामग्री थी वह अत्यंत थोड़ी थी, हथियार भी साधारण किस्म के थे, दुर्भाग्य से जिस बादशाही सहायता का भरोसा इन्होंने किया था वह भी नहीं पहुंची, फिर भी इनके नेतृत्व में जो वीरतापूर्ण संघर्ष हुआ वह एक मिसाल है। इस घटना से हुकुमचंद हतोत्साहित नहीं हुए।

लाला हुकुमचंद जी व उनके साथी मिर्जा मुनीर बेग ने गुप्त रूप से एक पत्र फारसी भाषा में मुगल सम्राट को लिखा, (कहा जाता है कि यह पत्र खून से लिखा गया था) जिसमें उन्हें ब्रितानियों के विरुद्ध संघर्ष में पूर्ण सहायता का विश्वास दिलाया, साथ ही ब्रितानियों के विरुद्ध अपने घृणा के भाव व्यक्त किए थे और अपने लिए युद्ध सामग्री की मांग की थी। हुकुमचंद जी मुगल सम्राट के उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए हांसी का प्रबन्ध स्वयं सम्हालने लगे। किन्तु दिल्ली से पत्र का उत्तर ही नहीं आया। इसी बीच दिल्ली पर ब्रितानियों ने अधिकार कर लिया और मुगल सम्राट् गिरफ्तार कर लिए गए।

15 नवम्बर 1857 को व्यक्तिगत फाइलों की जांच के दौरान लाला हुकुमचंद और मिर्जा मुनीर बेग के हस्ताक्षरों वाला वह पत्र ब्रितानियों के हाथ लग गया। यह पत्र दिल्ली के कमीश्नर सी.एस. सॉडर्स ने हिसार के कमिश्नर कार्टलैन्ड को भेज दिया और लिखा कि- इनके विरुद्ध कठोर कार्यवाही की जाए।

पत्र प्राप्त होते ही कलेक्टर एक सैनिक दस्ते को लेकर हांसी पहुंचे और हुकुमचंद और मिर्जा मुनीर बेग के मकानों पर छापे मारे गए। दोनों को गिरफ्तार कर लिया गया, साथ में हुकुमचंदजी के 13 वर्षीय भतीजे फकीर चंद को भी गिरफ्तार कर लिया गया। हिसार लाकर इन पर मुकदमा चला, एक सरसरी व दिखावटी कार्यवाही के बाद 18 जनवरी 1858 को हिसार के मजिस्ट्रेट जॉन एकिंसन ने लाला हुकुमचंद और मिर्जा मुनीर बेग को फांसी की सजा सुना दी। फकीर चंद को मुक्त कर दिया गया। 19 जनवरी 1858 को लाला हुकुमचंद और मिर्जा मुनीर बेग को लाला हुकुमचंद के मकान के सामने फांसी दे दी गई। ◘

30 जनवरी पुण्यतिथि पर विशेष

बहु आयामी व्यक्तित्व के धनी-महान सेनानी माखनलाल चतुर्वेदी

अपने राजनैतिक जीवन की शुरूआत एक क्रांतिकारी सोच के साथ करने वाले माखनलालजी ने अपने गांधीजी के प्रभाव में क्रांतिवाद का मार्ग छोड़कर उनके अहिंसा के संदेश को स्वीकार किया और अपनी रचनात्मक उर्जा को राष्ट्र प्रेम के उन गीतों में संजोया जिनमें विराट शस्त्र बली के समक्ष अपने को बलि कर देने का भाव पूरी रसात्मकता के साथ उभर आया। वह दौर ही कुछ ऐसा था जब अधिकांश साहित्यकार इसी रंग में अपनी रचनाओं का सृजन कर रहे थे।

ए. कमर

माखनलाल चतुर्वेदी बीसवीं शताब्दी का एक आलोकमय नाम है, जो विलक्षण बहुमुखी प्रतिभा का धनी था और जिसने अपने कर्म,वाणी एवं लेखनी की विपुल निधि को देश, समाज और मानवता पर आजीवन सतत् न्यौछावर किया। वे सिर्फ हिन्दी भाषा के मूर्धन्य, अप्रतिम गद्यकार, प्रखर पत्रकार, ओजस्वी वक्ता ही नहीं, अपितु अग्रिम पंक्ति के स्वातंत्र्य-समर-सेनानी और अडिग गांधीवादी थे। इन सभी भूमिकाओं का अद्भुत और सफल सामंजस्य उनके व्यक्तित्व तथा कर्म में साफ झलकता था।

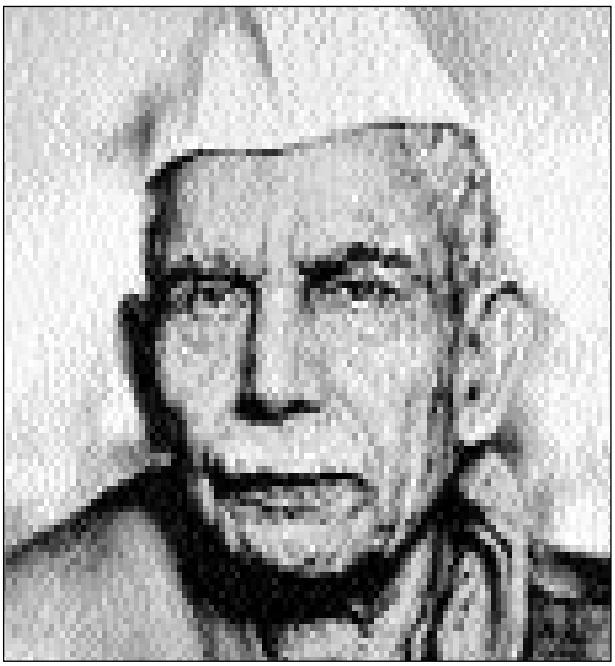

4 अप्रैल 1889 को होशंगाबाद जिले के गांव बाबई में पं.नन्दलाल चतुर्वेदी के घर माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म हुआ। जब वे मिडिल नार्मल स्कूल परीक्षा देने के लिए जबलपुर गये तब वही उनके जीवन की डगर पर पहला मोड़ था । वहां क्रातिकारियों के संपर्क में आए और जीवन पथ की दिशा निश्चित हो गई। शिक्षक के रूप में उनकी नियुक्ति खण्डवा की एक प्रायमरी शाला में हुई। बाद में पद से इस्तीफा दे दिया और खण्डवा ही उनकी कर्मभूमि रही। उनका निधन खण्डवा में 30 जनवरी 1968 ई. को हुआ।

पराधीन भारत की स्वतंत्रता और तदुपरांत गांधी दर्शन की राम-राज्य वाणी कल्पना के अनुरूप समाज रचना के लक्ष्य के प्रति उनके जीवन की हर सांस सम्पूर्णत: समर्पित थी। अहिंसक आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर अंग्रेजी राज में जेलों की यातनाएं उन्होंने वर्षो तक सहीं। कारावास के कष्टों ने उनके कवि मन को गहरी अनुभूतियां दी, साहित्य चेतना को नये आयाम दिए और उनकी पत्रकारिता को तीखे तेवर दिये। उनकी काव्य सर्जना 'एक भारतीय आत्मा' के उपनाम से हुई, जबकि वे पूर्ण भारतीय आत्मा थे। उनकी वाणी प्रत्येक भारतीय देशभक्त की वाणी थी और उस युग में क्या उनके सुर में सुर मिलाकर किस भारतीय ने ये गीत नहीं गया होगा कि-

मुझे तोड़ लेना वनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जाएं वीर अनेक।।

छायावाद की कोमल कांत पदावली वाले युग में भी उनके काव्य में ओज का एक ऐसा प्रवाह रहा, जिसने पूरे देश को राष्ट्र भावना में निमज्जित कर दिया। उनकी दृष्टि में जीवन का हर कार्य राष्ट्रोन्मुखी था। उनका स्वयं का जीवन भी उनकी इसी दृष्टि का सबल प्रमाण है। यह दृष्टि उनकी इन पंक्तियों में साफ तौर पर खूब उभरी है-

''वाणी, वीणा और वेणी की
त्रिवेणी धार बोले,
नृत्य बोले, गीत बोले,
मूर्ति बोले, प्यार बोले,
आज हिमगिर को पुकारो,
सिंधु सौ-सौ बार बोले,
आज गंगा की लहर में
प्रलय का व्यापार बोले''

जिस प्रलय के व्यापार का उल्लेख माखनलालजी ने उक्त पंक्तियों में किया था उसे उन्होंने अपनी पत्रकारिता में भरपूर संजोया। काव्य साहित्य और राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रांगण की तरह पत्रकारिता के क्षेत्र की कोई जंजीर उन्हें कभी नही बांध सकी। उनकी लेखनी भद्रता और मर्यादा की कायल थी, भय, त्रास अथवा बंधनों की नही। एक बार उन्होंने कहा था-हम फक्कड़, सपनों के स्वर्णों को लुटाने निकले हैं, इस दुनिया में। किसी भी फरमाइश के जूते बनाने वाले चर्मकार नहीं हैं हम। यह निर्भीक बेलौस फक्कड़ता ही उनकी प्रलय के व्यापार वाली पत्रकारिता, प्रतिदान से निरपेक्ष पत्रकारिता के मूल में थी। प्रभा तथा प्रताप

का सम्पादन उन्होंने बड़ी यशस्विता से किया।

राष्ट्रीय नव जागरण और मुक्ति आन्दोलन की प्रशक्त प्रेरणाओं को अपने सर्जकमूल और कर्मठ व्यक्तित्व में अंतर्भूत करते हुए उन्होंने अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को जो कुछ प्रदान किया वह प्रदेश विशेष की सीमाओं को लांघ कर समूचे राष्ट्र के लिए उनकी मूल्यवान विरासत के रूप में मान्य है और जो नवजागरण और मुक्ति आन्दोलनों की ऊर्जा से संयुक्त होकर आज भी हमारे लिए प्रेरणा का अजस्त्र स्त्रोत है।

नवजागरण के आलोक में भारतीय मुक्ति आन्दोलन की अपनी उर्जन से संयुक्त उनकी रचनाएं अपने स्तर पर भारतीय जाति और भारतीय जनगण की मुक्तिकामी चेतना को स्वर देती थीं। महात्मा गांधी के नेतृत्व में ''राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम'' अपनी खास सोच के साथ समूचे देश को जागृत करता हुआ जो रूख अपनाता है उसकी ही ये भावुक अभिव्यक्तियां थीं। अपने राजनैतिक जीवन की शुरूआत एक क्रांतिकारी सोच के साथ सृजन करने वाले माखनलालजी ने गांधीजी के प्रभाव में क्रांतिवाद का मार्ग छोड़कर उनके अंहिसा के संदेश को स्वीकार किया और अपनी रचनात्मक ऊर्जा को राष्ट्र प्रेम के उन गीतों में संजोया जिनमें विराट शस्त्र बली के समक्ष अपने को बलि कर देने का भाव पूरी रसात्मकता के साथ उभर आया। वह दौर ही कुछ ऐसा था जब अधिकांश साहित्यकार इसी रंग में अपनी रचनाओं का सृजन कर रहे थे। बिस्मिल की मशहूर गजल में बलिदान और कुर्बानी का यही भाव एक उन्माद की तरह अभिव्यक्त हुआ है-

''सरफरोशी की तमन्ना
अब हमारे दिल में है,
देखना है, जोर कितना
बाजू-ए-कातिल में है''

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा जैसा गीत, जो आजादी की लड़ाई में करोड़ों कंठों का गीत बनकर गूंजा करता था, बलिदान के इसी भाव को परिलक्षित करता है। आओ प्यारे वीरो आओ, देश धर्म पर बलि-बलि जाओ या फिर क्रांतिकारियों का यह गीत ''सर बांधे कफनवा हो, शहीदों की टोली निकली, ये सारे गीत आजादी के लिए मर मिटने वालों की इसी मरणधर्मी जोश को ही उजागर करते थे।

साहित्य जगत में माखनलालजी की पहचान केवल कवि तक ही सीमित नहीं रही वे ललित रचनात्मक एवं विचारात्मक गद्य के प्रणेता के रूप में भी कवि की ही भांति मुखर रहे। उनकी गद्य कृतियां रचनाकार मानस के न जाने कितने तेवरों को प्रस्तुत करती। उनकी कलम से निकली गद्य एवं पद्य रचनाएं में मातृभूमि की आजादी के लिए मर मिटने वाला एक दीवानापन एक समर्पित रचनाशीलता का केन्द्रीय स्वर बनकर उभरा।

उल्लेखनीय है कि माखनलालजी ने अपने जीवन में प्रभा, कर्मवीर और प्रताप का संपादन करते हुए अनेक उपनामों का सृजन किया था, जिनमें नवनीत, कुछ नहीं, एक भारतीय, एक उच्च शिक्षित, जनमेजय, विनोदी, विभूति भूषण, कोई है, रामनाथ आचार्य, मा.ल.चा., एम.एल.सी., एक बैठ ढाला ग्रेज्युएट, वनवासी, वनमाली, जनाब आलू, कमल नारायण शर्मा, मन्दलमय, एक भारतीय आत्मा आदि शामिल है। उनकी मान्यता थी कि कविता जीवन की तरह ही जितनी दुलारा जाने की वस्तु है, उतनी युगों के लिए क्रियात्मक साधना की वस्तु भी है।

माखनलालजी मूल रूप से ओज और विद्रोह के कवि थे। वे आरंभ से ही बड़े निर्भीक थे और स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय भाग भी लेते थे। क्रांतिकारियों के साथ उनके सीधे संबंध थे। मात्र 18 वर्ष की आयु में ही वे क्रांतिकारी दल में शामिल हो गए थे। राजद्रोह के अभियोग में सन् 1920, 1923 और 1930 ई. में उन्होंने जेल यात्राएं भी की और जेल की काल कोठरियों में भी उनकी कलम ने न विराम लिया और न आराम किया। माखनलालजी की आवाज केवल आवाज न थी बल्कि उससे भी बड़ी चीज थी, वह एक भूमि और आजाद होने के लिए तड़पती हुई ''भारतीय आत्मा'' का संकल्प थी। उनका कृतित्व और व्यक्तित्व सदा अमर रहेगा।

क्या आपका अखबार आज़ादी के संग्राम पर कोई सामग्री नहीं दे रहा... ?

जरा विचार कीजिए...

'ट्रेंड नहीं है ?'

अगर ट्रेंड बनाकर चलते तो आज़ादी मिलती ?

ट्रेंड से नहीं, हटकर सोचने से दुनिया आगे बढ़ती है।

जय हिंद.... जय स्वराज

स्वतंत्रता संग्राम और किसान आंदोलन

किसानों का योगदान भी रहा है आजादी के आंदोलन में

आजादी के संघर्ष के दौरान किसान आंदोलन कैसे पैदा हुआ, किसानों ने हालात बदलने की कोशिशें कैसे प्रारंभ कीं तथा स्वतंत्रता आंदोलन में किसानों के संघर्ष का योगदान क्या रहा। यह प्रश्न उस समय की परिस्थितियों को स्पष्ट करते हैं जो कि आज भी कमोवेश मौजूद हैं।

राजकुमार गुप्ता

आजादी के संघर्ष के दौरान किसान आंदोलन कैसे पैदा हुआ, किसानों ने हालात बदलने की कोशिशें कैसे प्रारंभ कीं तथा स्वतंत्रता आंदोलन में किसानों के संघर्ष का योगदान क्या रहा। यह प्रश्न उस समय की परिस्थितियों को स्पष्ट करते हैं जो कि आज भी कमोवेश मौजूद हैं।

सन् 1920 के जनवरी माह में ब्रिटिश सरकार ने किसानों पर करों में वृध्दि की। उस समय की सामूहिक सहकारिता की पीढ़ियों से चली आ रही समस्याओं को ब्रिटिश सरकार ने लेवी में भारी-भरकम वृध्दि कर चौपट कर दिया। इससे किसानों की सिंचाई व्यवस्था भी चौपट हो गई।

सन् 1928 के बारदौली सत्याग्रह में मिली सफलता ने किसानों में नया जोश भर दिया। ब्रिटिश सरकार ने इसके पहले लगान व्यवस्था तथा बंदोबस्त में परिवर्तन करने का कार्यक्रम शुरू कर दिया था, जिससे कृषिकर में बढ़ोतरी हो जाती तथा किसानों पर बोझ बढ़ जाता। किसानों ने इसका विरोध किया। इसी समय गांधी इरविन पैक्ट हुआ था परन्तु खुद महात्माजी ने आह्वान किया कि किसान केवल आधा लगान जमा करें तथा रसीद पूरे की लें अन्यथा लगान जमा न करें।

गुजरात के किसानों विशेषकर सूरत व खेड़ा के किसानों ने टैक्स जमा करने से मना कर दिया तथा सरकारी दमन से बचने के लिए हिजरत पर बड़ोदरा चले गये। सरकार ने उनकी जमीन तथा चल संपत्ति जब्त कर ली। बंगाल एवं बिहार के किसानों को चौकीदारी टैक्स देना पड़ता था। ये सरकारी चौकीदार चौकीदारी तो नहीं अपितु अत्याचार खूब करते थे, इसके खिलाफ भी खूब आंदोलन हुए।

इसी समय पंजाब में टैक्स रोको अभियान के साथ किसान सभाओं का अभ्युदय हुआ तथा कृषिकर व पानी की दरों में कटौती करने की मांग शुरू हुई। उल्लेखनीय है कि इसी समय पंजाब से पहली बार कृषि ऋण में कुछ कटौती करने की मांग उठी।

महाराष्ट्र, बिहार और मध्यप्रांत में किसानों तथा आदिवासियों ने जंगल सत्याग्रह प्रारंभ किया। सरकार ने वनों के सार्वजनिक उपयोग पर रोक लगाई थी। आंध्र में भी जमींदारों के खिलाफ आंदोलन शुरू हुआ, पहले-पहल इसकी शुरुआत नेल्लोर जिले की वेंकटगिरि जमींदारी से हुई।

उसी समय सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था। जब उसके ज्वार में उतार

आया तो उसके कतिपय सक्रिय कार्यकर्ताओं ने किसानों की समस्याओं की ओर रुख किया।

किसान सभा का पहला सम्मेलन – सन् 1934 में सी. एस. पी. (कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी) का गठन हुआ। इसमें वामपंथी शक्तियां शामिल होने लगीं। सी. एस. पी. के गठन के साथ ही साम्यवादी बजाए लुक-छिप कर काम करने के, सामने आकर अपना कार्यक्रम चलाने लगे। प्रो. एन. जी. रंगा जैसे अनेक नेता वर्षों से किसानों को संगठित करने के लिये कार्यरत थे। परन्तु वामपन्थी एकता ने ही इसे मूर्त रूप दिया। सन् 1936 में लखनऊ में अखिल भारतीय किसान कांगेस की स्थापना हुई। जिसका नाम बाद में अखिल भारतीय किसान सभा रखा गया। बिहार प्रांतीय सभा के अध्यक्ष स्वामी सहजानंद इसके अध्यक्ष बने तथा आंध्र किसान आंदोलन के प्रमुख एवं कृषि क्षेत्र के विद्वान प्रो. एन.जी. रंगा इसके महामंत्री बने। इसके पहले सम्मेलन में भाग लेने स्वयं पं. नेहरू आये तथा इसकी सराहना की। इस सम्मेलन में डॉ. राम मनोहर लोहिया, जय प्रकाश नारायण, मोहन लाल गौतम, कमल सरकार, सुधीन प्रमाणिक तथा अहमद दीन जैसे प्रमुख राजनेता शामिल हुए। सम्मेलन व्दारा घोषणा पत्र प्रकाशित करने तथा नियमित बुलेटिन निकालने का निर्णय लिया गया।

अखिल भारतीय किसान सभा ने अपना घोषणा पत्र कांग्रेस कार्य समिति को सौंप दिया ताकि वह सन् 1937 में होने वाले चुनावों के अपने घोषणा पत्र में उसे शामिल कर सके। किसान घोषणा पत्र में भूराजस्व कम करने, लगान में 50 प्रतिशत कमी करने, ऋणों की वसूली में रोक, सामंती वसूली की समाप्ति, किसानों को बेदखली से सुरसा, कृषि मजदूरों को गुजारे लायक वेतन और किसान यूनियनों को मान्यता जैसी मांगें शामिल थीं। फैजपुर अधिवेशन में कांग्रेस के साथ किसान सत्र भी अलग से हुआ जिसके अध्यक्ष एन जी रंगा थे । इस अवसर पर 500 किसानों का दल मनमाड से फैजपुर दतक पैदल मार्च करते हुए किसानों में जागरण का संदेश देते हुए आया। इस दल का स्वागत पं. नेहरू, शंकरराव देव, मानवेंदुराय नरेंन्द्र देव, एस. ए. डांगे, मीनू मसानी, यूसुफ मेहर अली, बंकिम मुकर्जी के अलावा अन्य किसान नेताओं ने आगे बढ़कर स्वागत किया।

सन् 1937 से किसान आंदोलन का नया दौर शुरू हुआ। 1937 से 1939 के तीन वर्ष किसान आंदोलन के उत्कर्ष के वर्ष रहे। इस दौरान थाना, जिला, तालुका स्तरों पर किसान सभाओं का गठन किया गया। इन सम्मेलनों के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमों को भी जोड़ा गया। ग्रामीण मेलों में कृषक समस्याओं के नाटक , उनके रीति रिवाजों के प्रदर्शन आदि होने लगे। किसान नकद एवं अनाज के रूप में संगठनों को सहयोग देने लगे।

केरल के मालाबार क्षेत्र में संगठित किसान आंदोलन का स्वरूप सामने आया। इसके लिये सी.एस.पी. के नेता गांव-गांव में घूमकर किसानों को जाग्रत करते रहे। इनकी मांगों में सामंती वसूलियां रोकने, नवीनीकरण शुल्क तथा लगान की अग्रिम अदायगी बंद करने तथा किसानों की जमींदारों व्दारा बेदखली का नियम समाप्त करना आदि शामिल थी।

मालाबार किसान सभा के संगठित प्रयासों से तथा प्रबल संघर्ष से मद्रास प्रेसीडेंसी मे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी मंत्रिमंडल में राजस्व मंत्री टी. प्रकाशम् ने तत्काल एक समिति गठित कर दी जिसने ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा करके किसानों की समस्याओं का आंकलन किया तथा उनके लिये राहत की योजना बनाई। इससे एक फायदा अवश्य हुआ कि राजाजी मंत्रिमंडल ने सन् 1940 में इस्तीफा देने के पहले किसानों को ऋणों में राहत देने का प्रस्ताव तो पारित कर ही दिया।

आंध्रप्रदेश के तटवर्ती क्षेत्रों में कृषक यात्राओं का आयोजन सन् 1933 से ही हो रहा था। इन यात्राओं के संयोजक किसानों की मांगों को अधिकारियों के समाने रखते तथा उनका समाधान भी प्राप्त करते थे । सन् 1938 में प्रांतीय किसान सम्मेलन ने एक विशाल मार्च का आयोजन किया। जिसमें 2000 से अधिक किसानों ने 2400 कि.मी. की यात्रा 9 जिलों से होकर संपन्न की । इसमें 1100 से अधिक प्रार्थना पत्र एकत्रित किये गये तथा 27 मार्च 1938 को मद्रास में प्रांतीय विधान सभा को सौंपा था।

जमींदारी की मांग बिहार से शुरू हुई। स्वामी सहजानंद ने बिहार प्रांतीय किसान सभा की स्थापना की थी। उनके साथ कार्यानंद शर्मा, राहुल सांस्कृतयायन, पंचानन शर्मा और यदुनंदन शर्मा जैसे किसान नेताओं ने सन् 1935 में बिहार प्रांतीय किसान सभा में जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पारित किया तथा जमींदारी उन्मूलन तथा अन्य मांगों को लेकर सन् 1938 में पटना में विशाल प्रदर्शन किया जिसमें एक लाख से अधिक किसान शामिल हुए।

इस तरह किसान आंदोलन आजादी के संग्राम के साथ चलता रहा। किसान सभाओं ने स्वतंत्रता संघर्ष में भरपूर सहयोग प्रदान किया। फलस्वरूप स्वतंत्रता तो प्राप्त हो गई परन्तु किसानों की समस्याएं अब तक पूरी तरह से हल नहीं हो हो पाई हैं। देश में किसान आंदोलन अब भी जारी है। देश की आजादी की पूर्णता किसानों की समस्याओं के समाधान से संलग्न है। क्योंकि किसान आंदोलन का उद्भव एवं विकास स्वतंत्रता संग्राम के साथ हुआ था।

◘

आजादी अकेली नहीं आती, अपने साथ जिम्मेदारियां भी लाती है, इसलिए जिम्मेदार नागरिकों को ही मिलती है।

–बेंजमिन

21 जनवरी शहादत पर विशेष

आजादी के लिए तड़पते रहे रासबिहारी

जाहिद खान

देश की आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने वाले क्रांतिकारियों का जब जिक्र होगा, महान क्रांतिकारी रासबिहारी बोस का नाम हमेशा आदर के साथ लिया जाता रहेगा। उन्होंने न केवल देश में कई क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि विदेश में रहकर भी वह देश को आजादी दिलाने के प्रयास में आजीवन लगे रहे। दिल्ली में वायसराय लार्ड चार्ल्स हाडग पर बम फेंकने की योजना बनाने, गदर की साजिश रचने और बाद में जापान जाकर इंडियन इंडिपेंडेस लीग और इंडियन नेशनल आर्मी की स्थापना करने में रासबिहारी बोस की महत्वपूर्ण भूमिका रही। हालांकि देश को आजाद करने के लिए किए गए उनके ये प्रयास सफल नहीं हो पाए लेकिन इससे स्वतंत्रता संग्राम में निभाई गई उनकी भूमिका का महत्व कम नहीं हो जाता है।

रासबिहारी बोस का जन्म 25 मई 1886 को बंगाल प्रांत में बर्दवान के सुबालदह गांव में हुआ। उन्होंने अपनी शिक्षा चंदननगर में हासिल की, जहां उनके पिता विनोदबिहारी बोस नियुक्त थे। रासबिहारी बोस बचपन से ही देश की आजादी का सपना देखा करते थे और क्रांतिकारी गतिविधियों में उनकी गहरी दिलचस्पी थी। प्रारंभ में रासबिहारी बोस ने देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान में कुछ समय तक हेड क्लर्क के रूप में काम किया। उसी दौरान उनका क्रांतिकारी जतिन मुखर्जी के अगुवाई वाले युगांतर के अमरेन्द्र चटर्जी से परिचय हुआ और वह बंगाल के क्रांतिकारियों के साथ जुड़ गए। बाद में वह श्री अरविंदो के राजनीतिक शिष्य रहे जतीन्द्रनाथ बनर्जी उर्फ निरालम्ब स्वामी के सम्पर्क में आने पर संयुक्त प्रांत,वर्तमान में उत्तर प्रदेश, और पंजाब के प्रमुख आर्य समाजी क्रांतिकारियों के करीब आए। दिल्ली में वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने की योजना बनाई। लेकिन निशाना चूक गया। इसके बाद ब्रिटिश पुलिस रासबिहारी बोस के पीछे लग गई और वह बचने के लिए रात में रेलगाड़ी से देहरादून भाग गए और आफिस में इस तरह काम करने लगे मानो कुछ हुआ ही नहीं हो। अगले दिन उन्होंने देहरादून के नागरिकों की एक सभा भी बुलाई, जिसमें उन्होंने वायसराय पर हुए हमले की निन्दा की। ऐसे में कौन संदेह कर सकता था कि इस हमले की साजिश रचने और उसे अंजाम देने में प्रमुख निभाने वाला उनके सामने ही

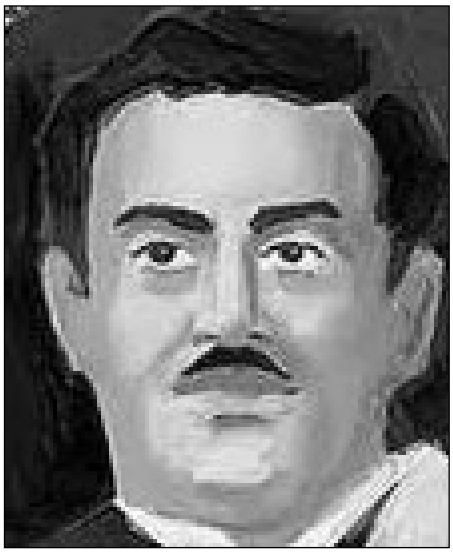

मौजूद है। 1913 में बंगाल में बाढ़ राहत कार्यों के दौरान रासबिहारी बोस जतिन मुखर्जी के सम्पर्क में आए, जिन्होंने उनमें नया जोश भरने का काम किया। रासबिहारी बोस इसके बाद दोगुने उत्साह के साथ फिर से क्रांतिकारी गतिविधियों के संचालन में लग गए। देश को आजाद कराने के लिए उन्होंने प्रथम विश्व युध्द के दौरान गदर की योजना बनाई। 1 फरवरी, 1915 में अनेक भरोसेमंद क्रांतिकारियों की सेना में घुसपैठ कराने की कोशिश की गई। युगांतर के नेताओं का विचार था कि यूरोप में युध्द होने के कारण चूंकि अभी अधिकतर सैनिक देश से बाहर गए हुए हैं, इसलिए बाकी को आसानी से हराया जा सकता है लेकिन यह कोशिश नाकाम रही और कई क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रिटिश खुफिया पुलिस ने रासबिहारी बोस को भी पकडने की कोशिश की लेकिन वह उनके हत्थे नहीं चढ़े और भागकर 1915 में जापान पहुंच गए, जहां उन्होंने कई वर्ष निर्वासन में बिताए। जापान में भी रासबिहारी बोस चुप नहीं बैठे और वहां के अपने जापानी क्रांतिकारी मित्रों के साथ मिलकर देश की आजादी के लिए प्रयास करते रहे। ब्रिटिश सरकार अब भी उनके पीछे लगी हुई थी और वह जापान सरकार से उनके प्रत्यर्पण की मांग कर रही थी, इसलिए वह लगभग एक साल तक अपनी पहचान और रिहाइश बदलते रहे। 1916 में जापान में ही रासबिहारी बोस ने प्रसिध्द पैन,एशियाई समर्थक सोमा आइजो और सोमा कोत्सुको की पुत्री से विवाह कर लिया और 1923 में वहां के नागरिक बन गए। जापान में वह पत्रकार और लेखक के रूप में रहने लगे। जापानी अधिकारियों को भारतीय राष्ट्रवादियों के पक्ष में खड़ा करने और देश की आजादी के आंदोलन को उनका सक्रिय समर्थन दिलाने में भी रासबिहारी बोस की भूमिका अहम रही।

देश को ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति दिलाने की आस लिए 21 जनवरी 1945 को यह वीर सपूत अपने वतन से मीलों दूर आजादी की शमां पर निसार हो गया। उनके निधन से कुछ समय पहले जापानी सरकार ने उन्हें, आर्डर आफ द राइजिंग सन के सम्मान से अलंकृत किया था। ◘

सुभाष जयंती 23 जनवरी पर विशेष

स्वाधीनता संग्राम के महान नेता-सुभाष चन्द्र बोस

जय हिन्द, राष्ट्रीय-मुहर, राष्ट्रीय-चिन्ह, राष्ट्रीय-बैंड, राष्ट्रीय-गीत और न जाने कितनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति आजाद हिंद फौज में सर्वथा भारतीय रीति से की गई। सुभाष बाबू द्वारा लगाई गई ''दिल्ली चलो'' की आवाज ने सिपाहियों पर जादू-सा असर किया। 18 मार्च 1944 का वह दिन भारत के इतिहास में स्वर्णअक्षरों में लिखा जाएगा, जब आजाद हिंद की सेनाएं कोहिमा और मणिपुर के युद्ध में जी जान से जुटी पड़ी थीं।

वीरेंद्र सिंह परिहार

नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की व्यक्तित्व एवं कृतित्व कुछ ऐसा रहा है कि वह निर्जीव एवं हतोत्साह व्यक्तियों के हृदयों में भी स्फूर्ति एवं प्राणों का संचार कर सकता है। जीवन की सभी आकांक्षाओं को उन्होंने देश की आजादी की वेदी पर बलि चढ़ा दिया। आई.सी.एस. में उच्च श्रेणी प्राप्त करने पर भी आपने भारत सरकार की उस सर्वोच्च नौकरी को देश के लिए तृण के समान ठुकरा दिया

नेताजी के पूर्वज बंगाल प्रांत के चौबीस परगना जिले के केदालिया गॉव के निवासी थे। इनका जन्म 23 जनवरी 1897 ई. को कटक में हुआ। पिता कटक में सरकारी वकील थे। सुभाष के विद्यार्थी जीवन की एक घटना अत्यंत मनोरंजक है। पड़ोस के एक गॉव में हैजा फैलने पर सुभाष बिना माता-पिता से कहे घर से चलकर वहॉ पहुॅच गए और कुछ दिन वहॉ आर्तो की सेवा कर वापस लौट आए। विद्यार्थी जीवन में एक दौर ऐसा भी आया कि रामकृष्ण परमहंस के उपदेशों से प्रभावित होकर पढ़ाई छोड़कर संन्यास लेने का निश्चय कर हरिद्वार एवं वृंदावन की ओर चले गए। लेकिन साधुओं का जीवन काफी निकट से देखने के बाद उन्होंने तय किया कि वह स्वत: शौर्य, साहस एवं बलिदान के पुंज हिमालय बनेंगे। इस तरह से उनका पुन: अध्ययन क्रम चल पड़ा। एक साथी पर किये गए अपमान के प्रतिकार में प्रोफेसर पर हमला करने के चलते आप कालेज से निकाल दिए गए पर दूसरे कालेज से दाखिला लेकर आप क्रमश: आई.ए.एस.के लिए विलायत गए। उसमें पास भी हो गए, पर देश लौटने पर देश की दु:खद स्थिति देखकर आप आई.ए.एस. से इस्तीफा देकर देशबंधु की सेना में स्वयंसेवक बन गए। देशबंधु द्वारा उन्हें राष्ट्रीय विद्यापीठ का आचार्य एवं कांग्रेस स्वयं सेवक दल का कप्तान बनाया गया। इसी दौरान प्रिंस ऑफ वेल्स के स्वागत के बहिष्कार के चलते सुभाष बाबू को हिरासत में लेते हुए छ: मास की सजा दे दी गई।

1922 में उत्तरी बंगाल की बाढ़ में आपने बाढ़-पीड़ितों की अद्भुत सहायता कर अपने कौशल का परिचय दिया। तत्पश्चात आप स्वराज पार्टी के प्रमुख दैनिक पत्र ''फारवर्ड'' के संपादक बनाए गए। 1924 में जब देशबन्धु कलकत्ता के मेयर बने तब आपको चीफ एग्जीक्यूटिव ऑफीसर बनाया गया। उसी बर्ष बंगाल आर्डिनेंस के अंतर्गत आपको गिरफ्तार किया गया,जहां वह गंभीर रूप से बीमार हो गए। ऐसी स्थिति में 15 मई 1927 को सुभाष बाबू को रिहा कर दिया गया। आश्चर्यजनक बात यह है कि जेल प्रवास के दौरान ही उन्हे धारा-सभा का सदस्य चुन लिया गया। सन 1928 के कलकत्ता कांग्रेस में महात्मा गांधी के औपनिवेशिक स्वराज के प्रस्ताव पर पूर्ण स्वराज वाले संशोधन को नेताजी द्वारा पूरे दम-खम के साथ समर्थन किया गया। इसी बीच सुभाष बाबू कलकत्ता नगर निगम के मेयर बन चुके थे। इनके नेतृत्व में अंग्रेज शासन के विरोध में जुलूस निकाला गया। जुलूस में लाठियां तो बरसाई ही गई, उन्हे गिरफतार भी कर लिया गया। जेल में नाना प्रकार की यातनाएं दी गईं जिससे उनका टी.बी.रोग पुन: उभर आया। किसी तरह से रिहा होने पर वह स्विटजरलैंड चले गये। पिता की मृत्यु पर एक माह के लिए भारत लौटे पर अंग्रेज सरकार के बाध्य करने पर उन्हें पुन: इंग्लैण्ड लौटना पड़ा। अंतत: सुभाष बाबू ने तय किया कि वह वापस लौटेंगे, पर अंग्रेज सरकार का कहना था कि यदि वह भारत वापस लौटे तो जेल में ही रहना पड़ेगा। फलत: मुम्बई उतरते ही उन्हें कैद कर लिया गया, इससे पूरे देश में विक्षोभ फैल गया। अंतत: जेल में स्वास्थ्य काफी खराब होने के चलते 17 मार्च 1936 को उन्हें रिहा कर दिया गया। स्वास्थ्य लाभ के लिए नेताजी को पुन: यूरोप जाना पड़ा। जब वह लंदन में थे तभी हरिपुरा-कांग्रेस के

अध्यक्ष चुन लिए गए जो एक बड़ी उपलब्धि थी। उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहा जाता था। इस चुनाव में उन्होंने गांधीजी के उम्मीदवार पट्टाभि सीतारमैया को हराया था। इसके चलते कांग्रेस के एक बड़े गुट ने उनसे असहयोग करना शुरू कर दिया, जिसके चलते नेताजी ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और फारवर्ड ब्लाक नामक दल की स्थापना की इसके चलते उन्हे कांग्रेस से निर्वासित कर दिया गया।

तब तक विश्व-युद्ध के काले बादल घिर चुके थे, कांग्रेसी मंत्रि-मंडलों ने त्याग पत्र दे दिये थे। सरकार सुभाष बाबू के संकेत पर ही बंगाल में उठते तूफानों को देखकर भयभीत हो गई और नेताजी को पुन: जेल में डाल दिया गया। नेताजी ने जेल में ही अनशन आरंभ कर दिया। फलत: सरकार ने एक महीने के लिए नेताजी को जेल से छोड़ तो दिया पर उनके घर पर कड़ा पहरा लगवा दिया। वेश बदलकर और युक्तिपूर्वक नेताजी ने अंग्रेजी सरकार को चकमा देते हुए कभी मोटर और कभी रेल द्वारा पेशावर पहुंच गए। पठान जियाउद्दीन के वेश में एक काफिले के साथ देश की सीमा पार कर काबुल पहुंच गए।

काफी व्यवधानों के बाद एक जर्मन व्यक्ति के पासपोर्ट का उपयोग करके वायुयान द्वारा जर्मनी पहुॅच गए। जहॉ पर जर्मन सरकार के अतिथि बने। बर्लिन और रोम रेडियो से आपके व्याख्यान आए दिन होने लगे। जून 1943 में एक पनडुब्बी द्वारा वह टोकियो आ गए। 5 जुलाई को उन्होंने आजाद हिन्द फौज के गठन की घोषणा की और आजाद हिन्द फौज के सैनिक भारत की आजादी का संदेश लेकर आगे बढ़ने लगे। आजाद हिंद फौज का संगठन और कार्यक्रम बड़े-बड़े युद्ध-विशारदों को भी विस्मय में डालने वाला था। गांधी ब्रिगेड, सुभाष ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड, आजाद ब्रिगेड, इस तरह से चार ब्रिगेडों में सेना को बांटा गया था। कैप्टन लक्ष्मी सहगल के नेतृत्व में महिलाओं की ''झांसी की रानी'' ब्रिगेड बनाई गई। बच्चों की भी एक टुकड़ी थी। जापान, जर्मनी, इटली, चीन, मंचुरिया आदि नौ देशों ने आजाद हिंद सरकार को एकमत से स्वीकार कर लिया था। आजाद हिंद सरकार का केन्द्र पहले सिंगापुर बनाया गया, बाद में बर्मा में रंगून को ही अस्थायी सरकार की राजधानी और प्रधान कार्यालय बनाया गया। क्रमश: अनुशासन एवं व्यवस्था पूर्ण ढंग से आजाद हिंद फौज सरकार का कार्य चलने लगा। इसी बीच हिंद फौज द्वारा अंडमान-निकोबार द्वीप अंग्रेजी सत्ता से स्वतंत्र कराये जा चुके थे और उनके नाम ''शहीद'' और ''स्वराज'' द्वीप रखे जा चुके थे।

राष्ट्रीय अभिवादन (जय हिन्द) राष्ट्रीय-मुहर, राष्ट्रीय-चिन्ह, राष्ट्रीय-बैंड, राष्ट्रीय-गीत और न जाने कितनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति आजाद हिंद फौज में सर्वथा भारतीय रीति से की गई। सुभाष बाबू द्वारा लगाई गई ''दिल्ली चलो'' की आवाज ने सिपाहियों पर जादू-सा असर किया। 18 मार्च 1944 का वह दिन भारत के इतिहास में स्वर्णअक्षरों में लिखा जाएगा, जब आजाद हिंद की सेनाएं कोहिमा और मणिपुर के युद्ध में जी जान से जुटी पड़ी थीं। दो महीनों में ही उनका आक्रमण इतना उग्र हो गया कि अंग्रेजी सेना को पीछे हटना पड़ा, परंतु साधनों विशेषकर वायुसेना के अभाव से सैनिकों को पीछे हटने पर विवश होना पड़ा। पुन: तैयारी के साथ दूसरा आक्रमण किया गया। परंतु ब्रिटिश सरकार के विशाल साधनों के सामने यह सेना कब तक जमी रह सकती थी ? 19 मई 1945 को अंग्रेजों ने पुन: रंगून पर अधिकार कर लिया। जापान के आत्म-समपर्ण कर देने के पश्चात आजाद हिंद फौज का काम एक तरह से समाप्त सा-हो गया, परंतु उसका नाम युगों तक इतिहास में अमर रहेगा, पीठ पर सुरंगें बांधकर और जमीन पर लेटकर ब्रिटिश टैंकों को उड़ाने वाले बाल सेना के वीर बच्चे भूखे-पेट अथवा पत्ते खाकर, छापा मारने वाले एवं गुलामी के घी से आजादी की घास को उत्कृष्ट समझने वाले सैनिक एवं सोलह-सोलह घंटों तक मौलमीन में युद्ध करके ब्रिटिश सेना के छक्के छुड़ा देने वाली ''झांसी की रानी'' रेजीमेंट की सैनिकाएं युग-युग तक इतिहास के पृष्ठों पर अमर ही नहीं रहेंगे वरन आने वाली पीढ़ियों को प्रेरणा भी देते रहेंगे। 23 अगस्त 1945 को यह समाचार सुनने को मिला कि 18 अगस्त को नेताजी विमान-दुर्घटना में बुरी तरह घायल हुए और उसी रात संसार से चल बसे। वैसे उनके परिवार जन और बहुत सारे लोग इस बात को अब भी मानने को तैयार नहीं हैं। सुविज्ञ सूत्रों का कहना है कि 1945 के बाद भी बहुत दिनो तक नेताजी जीवित रहे, पर उनका शेष जीवन सोवियत रूस की जेल में बीता।

सच्चाई कुछ भी हो, पर इतना तो सच है कि नेताजी सुभाष ने न सिर्फ अपना पूरा जीवन देश के लिए समर्पित कर दिया, वरन वह देश भक्ति के मामले मे युगों तक प्रकाश-स्तम्भ की भांति जगमगाते रहेंगे और उनका नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेगा। नेताजी सुभाष पर लिखी धर्मवीर भारती की कविता के ये अंश हमेशा सामयिक रहेंगे-

'दूर देश में किसी विदेशी,
गगन खण्ड के नीचे,
सोए होंगे तुम किरनों की
तीरों की शैया पर,
मानवता के तरूण रक्त से
लिखा संदेशा पाकर,
मृत्यु देवताओं ने होंगे
प्राण तुम्हारे खींचे,
प्राण तुम्हारे धूमकेतु से चीर
गगन पट झीना,
जिस दिन पहुंचे होंगे
देवलोक की सीमाओं पर,
अमर हो गयी होगी
आसन से मौत मूर्छिता होकर,
और फट गया होगा
ईश्वर के मरघट का सीना,

◘